अथ पाठः

अथ स्त्रीप्रत्यय-प्रकरणम्

अब लघु सिद्धान्तकौमुदी के इस अन्तिमपाठ में स्त्रीप्रत्ययों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। संस्कृतवैयाकरणों के अनुसार लिङ्ग भी प्रातिपादिक के अर्थ में ही सम्मिलित होता है स्त्रीप्रत्यय केवल उस को द्योतित करते हैं अतएव स्त्रीप्रत्ययों के बिना भी अनेक शब्दों में स्त्रीत्व का बोध स्वतः ही हुआ करता है। यथा– वाच्, गिर्, पुर्, दृश् आदियों में स्त्रीत्वद्योतक प्रत्यय के बिना भी स्त्रीत्व का बोध हो जाता है।

अष्टाध्यायी में इस प्रकरण से पूर्व अधिकार चलाते हैं–

[१२४४] स्त्रियाम् ।४।१।३।।

अष्टाध्यायी में यहाँ से लेकर 'समर्थानां प्रथमाद्वा' [४.१.८२] सूत्र तक जितने प्रत्यय कहे गये हैं वे सब स्त्रीत्व के द्योतन करने में प्रयुक्त होते हैं इस सूत्र का अधिकार स्त्रीप्रत्ययविधायक प्रत्येक सूत्र में जाता है।

[१२४५] अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।।

अजादि– अतः, टाप्। यदि स्त्रीत्व का द्योतन करना हो तो अज आदि गणपठित प्रातिपदिकों से तथा अदन्त प्रातिपदिकों से परे टाप् प्रत्यय हो जाता है। टाप् में टकार और पकार इत् हैं 'आ' मात्र शेष रहता है।

अजादिगण के उदाहरण यथा–

अज [बकरा] शब्द अजादिगण का प्रथम शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में इस से प्रकृतसूत्र द्वारा टाप् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलोप करने से–'अज+आ'। अब 'अकः सवर्णे दीर्घः' [४२] से सवर्णदीर्घ हो 'अजा' शब्द बन जाता है। आबन्त होने के कारण इस से परे प्रथमैकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय लाकर उस का हल्ङ्यादिलोप [१७९] करने से 'अजा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। अजा का अर्थ है– बकरी। इसी प्रकार-एडक+टाप्=एडका (भेड़)। अश्व + टाप् = अश्वा (घोड़ी)। चटक + टाप् = चटका (चिड़िया)। अश्मुषिक+टाप्=मूषिका (चूही)। बाल+टाप्=बाला (बच्ची)। वत्स+टाप्=वत्सा (बच्ची या बछड़ी)। होड+टाप्+=होडा (बाला)। मन्द+टाप्=मन्दा (बालिका)। विलात+टाप्=विलाता (बाला या नवयौवना)।

अदन्तों से यथा– मेध+टाप्=मेधा (बुद्धि)। गङ्ग+टाप्=गङ्गा (गङ्गा नदी)। सर्व+टाप्=सर्वा (सब)।

अजादिगणपठित सब शब्द यद्यपि अदन्त हैं अतः अदन्त होने से ही उन से टाप् स्वतः सिद्ध था ही पुनः उन का पृथक् उल्लेख सूत्र में क्यों किया गया है? इस का उत्तर यह है कि बाधक प्रत्ययों का बाध करने के लिये ही यहाँ अजादियों का पृथक् उल्लेख किया गया है। यथा– अजा, अश्वा आदि गे 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' [१२६५] से जातिलक्षण ङीष् प्राप्त था। वत्सा आदि में 'व्यसि प्रथमे' [१२५२] से ङीप् प्राप्त था। परन्तु अब विशेष उल्लेख के कारण वे नहीं होते टाप् ही होता है।

[१२४६] उगितश्च ।४।१।६।।

उगितः, च। उगिदन्त अर्थात् जिस शब्द का उक्= उ, ऋ, लृ वर्ण इत् हो तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्वद्योतन की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाता है। ङीप् के ङकार और पकार इत्संज्ञक होने से लुप्त हो जाते हैं 'ई' मात्र शेष रहता है।

उदाहरण यथा– भवत्, पचत्, दीव्यत् आदि शब्द शतृप्रत्यान्त हैं। अन्त्य ऋकार के इत् होने से शतृप्रत्यय उगित् है अतः भवत्, पचत्, दीव्यत् आदि शब्द उगिदन्त प्रातिपदिक हैं। इन से स्त्रीत्वद्योतन की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलोप करने पर 'भवत्+ई'। 'शप्श्यनोर्नित्यम्' [३६६] से नुम् का आगम होकर नकार को अनुस्वार [७८] तथा अनुस्वार को परसवर्ण [७९] करने पर 'भवन्ती' शब्द बना। अब ङ्यन्त होने से प्रथमा के एकवचन

सु का हल्ङ्यादिलोप होकर 'भवन्ती' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार 'पचन्ती, दीव्यन्ती' प्रयोगों की सिद्धि होती है।

सर्वनाम भवत् (भवतु=आप) शब्द यद्यपि शतृप्रत्ययान्त नहीं तथापि उकार के इत् होने से उगित् है अत: इस से भी स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय होकर 'भवती' प्रयोग सिद्ध होता हैं। शत्रन्त न होने से यहाँ नुम् आगम नहीं होता।

[१२४७] टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप: ।४।१।१५।।

टित्-ढ-अण्-अञ्-द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरप:। गौण को उपसर्जन तथा प्रधान को अनुपसर्जन कहते हैं। अनुपसर्जन (प्रधान) जो-टित्, ढ, अण्, अञ्' द्वयसच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप्-एतदन्त अदन्त प्रातिपदिक, उन से स्त्रीत्वद्योतन की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाता है। ङीप् के अनुबन्धों का लोप हो 'ई' शेष रहता है।

टित् दो प्रकार का है (१) प्रत्यय का टित् होना, (२) प्रातिपदिक या धातु का टित् होना। यहाँ दोनों प्रकार का टित् अभिप्रेत है। यथा– 'कुरुचर' शब्द 'चरेष्ट:' [७९२] द्वारा टप्रत्ययान्त सिद्ध हुआ है। टप्रत्यय टित् है क्योंकि इसके टकार की इत्संज्ञा होती है। तो इस प्रकार यहाँ टित्प्रत्ययान्त अदन्त शब्द 'कुरुचर' से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर-'कुरुचर+ई' हुआ। अब 'यस्येति च' [२३६] से भसंज्ञक अकार का लोप कर सुप्रत्यय लाने पर उसका हल्ङ्यादिलोप हो 'कुरुचरी' (कुरुषु चरतीति स्त्री, कुरुदेश में घूमने वाली स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि 'कुरुचर' में तत्पुरुषसमास के कारण उत्तरपद प्रधान है अत: यहाँ 'चर' यह टित्प्रत्यान्त शब्द अनुपसर्जन है अत: ङीप् हो गया है। यदि टिदन्त आदि उपसर्जन (गौण) होंगे तो ङीप् न होगा। यथा–

बहव: कुरुचरा यस्यां सा-बहुकुरुचरा नगरी। यहाँ अन्यपदप्रधान बहुव्रीहि में कुरुचर' यह टिदन्त गौण है अत: बहुचरशब्द से प्रकृतसूत्र से ङीप् न होकर 'अजाद्यतष्टाप् [१२४५] से टाप् ही होता है।

नदट्, देवट् आदि शब्दों के टकार की इत्संज्ञा हो कर नद और देव शब्द रह जाते हैं। टित्त्व के कारण इन से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप्, भसंज्ञक अकार का लोप कर पूर्ववत् विभक्ति लाने से 'नदी' और 'देवी' शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

ढ-सुपर्णीशब्द से अपत्य अर्थ में 'स्त्रीभ्यो ढक् [१०१७] सूत्र से ढक्प्रत्यय, 'आयनेयीनीयिय:०' [१११०] से ढ् को एय् आदेश, प्रत्यय के कित्त्व के कारण आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का 'यस्येतिच' [२३६] से लोप कर 'सौपर्णेय' यह ढक्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय हो भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'सौपर्णेयी' (सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री, सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहन) प्रयोग सिद्ध होता है।

अण्-इन्द्रशब्द से 'साऽस्य देवता' [१०३८] के अर्थ में अण् प्रत्यय, प्रत्यय के णित्त्व के कारण आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप हो 'ऐन्द्र' यह अण्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीप्, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्ति कार्य करने से 'ऐन्द्री' प्रयोग सिद्ध हो जाता है-इन्द्रो देवताऽस्या इति ऐन्द्री, इन्द्र जिस का देवता है ऐसी दिशा आदि।

अञ्– उत्सशब्द से 'तत्र भव:' [१०८९] के अर्थ में 'उत्सादिभ्योऽञ्' [९९९] से अञ् प्रत्यय, प्रत्यय के ञित्त्व के कारण आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप हो 'औत्स' यह अञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीप्, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्ति कार्य करने से 'औत्सी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। उत्से भवा-औत्सी, झरने में होने वाली।

द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्– ऊरुशब्द से 'ऊरु है प्रमाण जिसका 'इस अर्थ में 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच:' [११६४] सूत्र से द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होकर-'ऊरुद्वयस, ऊरुदघ्न, ऊरुमात्र' ये प्रातिपदिक निष्पन्न होते हैं। अब

स्त्रीत्व की विवक्षा में इन से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीप् प्रत्यय, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। ऊरू प्रमाणमस्याः, ऊरुप्रमाण गहरी नदी आदि।

तयप्– पञ्चन्शब्द से 'पांच हैं अवयव जिसके' इस अर्थ में 'संख्याया अवयवे तयप्' [११६८] सूत्र से तयप् प्रत्यय हो पदान्त नकार का लोप करने पर 'पञ्चतय प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृसूत्र से ङीप्प्रत्यय, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्ति कार्य करने पर 'पञ्चतयी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। पञ्च अवयवा यस्याः सा=पञ्चतयी। पांच अवयवों वाली अवयविनी।

ठक्– अक्षशब्द से 'पासों से खेलता या जीतता है' इस अर्थ में 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' [१११४] सूत्र से ठक् प्रत्यय, 'ठस्येकः' [१०२४] से ठकार को इक् आदेश, प्रत्यय के कित्त्व के कारण आदिवृद्धि [९९८] तथा भसंज्ञक अकार का लोप करने से 'आक्षिक' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीप्, अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'आक्षिकी' प्रयोग सिद्ध होता है। अक्षैर्दीव्यतीति आक्षिकी स्त्री।

ठञ्– प्रस्थशब्द से 'तेन क्रीतम्' [११४१] अर्थ में ठञ् प्रत्यय, ठकार को इक् आदेश, आदि अच् को वृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करने से 'प्रास्थिक' प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप्, अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'प्रास्थिकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। प्रस्थेन क्रीता प्रास्थिकी (प्रस्थभर वस्तु से खरीदी हुई)।

ठञ् का दूसरा सुप्रसिद्ध उदाहरण– लवणशब्द से 'तदस्य पण्यम् (=इस का विक्रेता) अर्थ में 'लवणाट् ठञ् च' [४.४.५२] सूत्र से ठञ् प्रत्यय, ठकार को इक् आदेश, आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करने पर 'लावणिक' प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। अब इस से स्त्रीत्व द्योतन की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप्, अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'लावणिकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। लवणं पण्यमस्या इति लावणिकी (लवण बेचने वाली)।

कञ्– यादृश शब्द 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' [३४७] सूत्र द्वारा पीछे हलन्त पुंलिङ्गप्रकरण में सिद्ध किया जा चुका है। इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र द्वारा ङीप्, भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'यादृशी' (जैसी) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

क्वरप्– 'इण् गतौ' धातु से तच्छीलादि कर्त्ता अर्थ में 'इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप्' [३.२.१६३] सूत्र से क्वरप् (वर) प्रत्ययकर तुक् का आगम करने से 'इत्वर' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप्, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने से 'इत्वरी' (गमनशीला, कुलटा) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

वा० – नञ्-स्नञ्-ईकक्-ख्युंस्तरुण-तलुनानामुपसंख्यानम्॥

नञ्प्रत्ययान्त, स्नञ्प्रत्ययान्त, ईकक्प्रत्ययान्त, ख्युन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से तथा तरुण और तलुन प्रातिपदिकों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाता है।

नञ्– स्त्रैणशब्द तद्धितप्रकरण में 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' [१०००] सूत्रद्वारा नञ्प्रत्ययान्त सिद्ध किया गया है। इस से स्त्रीत्वद्योतन की विवक्षा में ङीप् हो पूर्ववत् प्रक्रिया करने पर 'स्त्रैणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। स्त्रीषु भाव– स्त्रैणी, स्त्रियों में होने वाली।

स्नञ्– पौंस्नशब्द भी तद्धितप्रकरण में 'स्त्रीपुंसाभ्यां० [१०००] सूत्र द्वारा स्नञ्प्रत्ययान्त सिद्ध किया गया है। इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् हो पूर्वोक्तप्रक्रियानुसार 'पौंस्नी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। पुंसु भाव– पौंस्नी, पुरुषों में होने वाली।

ईकक्– हथियारवाचक शक्ति शब्द से 'हथियार वाला' अर्थ में 'शक्तियष्ट्योरीकक्' [४.४.५९] सूत्र द्वारा ईकक् (ईक) प्रत्यय हो आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक इकार का 'यस्येति च' [२३६] से लोप करने पर 'शाक्तीक' प्रातिपदिक

निष्पन्न होता है। अब इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतवार्त्तिक से ङीप्, अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'शाक्तीकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। शक्तिः प्रहरणम् अस्या इति शाक्तीकी (शाक्तिनामक हथियार वाली स्त्री)

ख्युन्– अनाढ्य आढ्यः क्रियतेऽनया इति आढ्यङ्करणी (विद्या)। जिस के द्वारा निर्धनव्यक्ति भी धनी बनाया जाता है– ऐसी विद्या आदि। यहाँ च्व्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में वर्त्तमान आढ्यशब्द से करणकारक में ख्युन् (यु) प्रत्यय, यु को अन आदेश, गुण, 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' [७९७] से मुम् का आगम तथा उपपदसमास कर मकार को अनुस्वार तथा अनुस्वार को परसवर्ण करने पर 'आढ्यङ्करण' प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतवार्त्तिक से ङीप्, अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'आढ्यङ्करणी' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

तरुण, तलुन– ये दोनों शब्द युववाचक हैं इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतवार्त्तिक से ङीप् प्रत्यय हो अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'तरुणी, तलुनी' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। तरुणी=युवतिः।

[१२४८] यञश्च ।४।१।१६।।

यञः, च। स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा–

गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री– गार्गी (गर्गगोत्र की कन्यासन्तति)। गर्गशब्द से- 'गर्गादिभ्यो यञ्' [१००५] द्वारा गोत्रापत्य में यञ्प्रत्यय हो आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप कर 'गार्ग्य' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब यञ्प्रत्ययान्त इस प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र द्वारा ङीप् (ई) प्रत्यय कर भसंज्ञक अकार का लोप हो 'गार्ग्य्+ई' हुआ। अब अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है-

[१२४९] हलस्तद्धितस्य ।६।४।१५०।।

हलः, तद्धितस्य। हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप हो जाता है ईकार परे हो तो। उदाहरण यथा-

'गार्ग्य्+ई' यहाँ ईकार परे है अतः हल्=गकार से परे तद्धित-यञ् के उपधाभूत यकार का लोप हो-'गार्गी'। अब 'सु' प्रत्यय ला कर उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्-लोप करने से 'गार्गी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

अब इस विषय में प्राच्यों का मत निर्दिष्ट करते हैं–

[१२५०] प्राचां ष्फ तद्धितः ।४।१।१७।।

प्राच्य आचार्यों के मत में यञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ष्फ' प्रत्यय हो जाता है। और वह तद्धितसंज्ञक होता है। ष्फ को तद्धित मानने से ष्फ प्रत्ययान्त की प्रातिपदिकसंज्ञा सिद्ध हो जाती है। 'ष्फ' में आदि षकार 'षः प्रत्ययस्य' [८३९] द्वारा इत्संज्ञक होकर लुप्त हो जाता है। 'फ' मात्र शेष रहता है। 'फ' के आदि फकार को 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' [१११०] सूत्र से 'आयन् आदेश हो जाता है। तथाहि–

गार्ग्यप्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्राच्य आचार्यों के मतानुसार प्रकृतसूत्र से ष्फ प्रत्यय हो अनुबन्धलोप कर 'आयनेयीनीयियः०' [१११०] सूत्र से 'फ' के आदि फकार को आयन् आदेश हो जाता है– गार्ग्य आयन् अ=गार्ग्य आयन। अब 'यस्येति च' [२३६] से भसंज्ञक अकार का लोप होकर 'गार्ग्यायन' इस स्थिति में अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है–

[१२५१] षिद्-गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१।।

षित्-गौरादिभ्यः, च। जिस का षकार इत् है ऐसे प्रातिपदिक से परे तथा गौर आदि गणपठित प्रातिपदिकों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् (ई) प्रत्यय हो जाता है।

'गार्ग्यायन' यह ष्फप्रत्ययान्त होने से षित् प्रातिपदिक है। अतः प्रकृतसूत्र से इस से ङीष् प्रत्यय हो– 'गार्ग्यायन+ई'। अब भसंज्ञक अकार का लोप हो णत्व कर विभक्ति लाने से 'गार्ग्यायणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

षित् का अन्य उदाहरण यथा–

नृत् धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन्' [३.१.१४५] द्वारा शिल्पी कर्त्ता में ष्वुन् प्रत्यय कर अनुबन्धलोप हो– 'नृत्+वु' हुआ। वु को 'युवोरनाकौ' [७८५] से 'अक' आदेश तथा लघूपधगुण करने से 'नर्त्तक' [नाचने के शिल्प वाला] प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। ष्वुन् प्रत्ययान्त होने से 'नर्तक' षित् है अत: इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् (ई), भसंज्ञक अकार का लोप तथा अन्त में विभक्तिकार्य करने पर 'नर्त्तकी' (नाचने के शिल्पवाली) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

गौरादियों क उदाहरण यथा–

'गौर' शब्द गौरादिगण का प्रथम शब्द है। गौरशब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् (ई) प्रत्यय हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'गौरी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। अष्टवर्षा भवेद् गौरी-अष्टवर्षीया कन्या अथवा गौरवर्णा।

गौरादिगण में एक गणसूत्र आता है– 'आमनडुहः स्त्रियां वा' अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा में अनडुह् शब्द से ङीष् प्रत्यय हो कर अनडुह् को आम् का आगम विकल्प से हो जाता है। यथा– अनडुह्+ङीष्=अनडुह्+ई इस दशा में आम् का आगम विकल्प से होकर आम्पक्ष में यण् कर विभक्ति लाने से 'अनड्वाही' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। आम् के अभाव में 'अनडुही' बनेगा। अनड्वाही=अनडुही (गाय)।

[१२५२] वयसि प्रथमे ।४।१।२०।।

प्रथम वय (आयु) के वाचक अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा–

'कुमार' प्रातिपदिक, प्रथमवयोवाचक है अत: इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीप्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'कुमारी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-किशोरी।

शिशु प्रातिपदिक अदन्त नहीं अत: इससे ङीप् नहीं होता-शिशुरयम्, शिशुरियम्। बालशब्द का पाठ अजादिगण में किया गया है अत: उससे टाप् होता है– बाला।

[१२५३] द्विगोः ।४।१।२१।।

अदन्त द्विगुसमास से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा–

त्रयाणां लोकानां समाहारः-त्रिलोकी (तीन लोकों का समूह)। यहाँ 'त्रि आम्+लोक आम्' इस अलौकिकविग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' [९३६] से समाहार अर्थ में समास हो कर 'संख्यापूर्वो द्विगुः' [९४१] से उसकी द्विगुसंज्ञा हो जाती है। तब समास में सुपों का लुक् होकर 'त्रिलोक' शब्द बन जाता है। अब 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इस वचन से स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् का बाध कर प्रकृतसूत्र से ङीप् हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'त्रिलोकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः-अष्टाध्यायी।

त्रयाणां फलानां समाहारः– त्रिफला [हरड़-बहेड़ा-आमला इन तीन फलों का समूह]। यहाँ भी यद्यपि अकारान्तोत्तरपद द्विगुसमास है तथापि इसका अजादिगण में विशेष पाठ होने के कारण ङीप् न हो कर 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् ही होता है। इसी प्रकार-त्रयाणाम् अनीकानां (मुखानाम्) समाहारः– त्र्यनीका (नभ-जल-स्थलात्मक त्रिमुखी सेना) यहाँ भी टाप् होता है।

[१२५४] वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः ।४।१।३९।।

वर्णवाची (रङ्गवाची) अनुदात्तान्त् तकारोपध अदन्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो जाता है किञ्च ङीप् पक्ष में तकार को नकार आदेश भी हो जाता है।

उदाहरण यथा– 'एत' (चितकबरा, रंगबिरङ्ग) प्रातिपदिक वर्णवाचक है, इस का अन्त्य अकार अनुदात्त है, इस की उपधा में तकार भी है अत: स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र द्वारा इस से विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो ङीप्पक्ष

में तकार को नकार आदेश हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने पर 'एनी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। जिस पक्ष में ङीप्-नत्व नहीं होता वहां 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् हो सवर्णदीर्घ कर विभक्तिकार्य करने से 'एता' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-रोहित (लालरंग वाला) शब्द से-- 'रोहिणी' और 'रोहिता' इन दो रूपों की सिद्धि होती है।

श्वेतशब्द का स्त्रीत्व में 'श्वेता' बनता है। इसका अन्त्य अनुदात्त नहीं किन्तु उदात्त है अत: 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से केवल टाप् ही होता है ङीप्-नत्व नहीं होते।

[१२५५] वो तो गुणवचनात् ।४।१।४४।।

वा, उत:, गुणवचनात्। ह्रस्व उकारान्त गुणवाची प्रातिपदिक् से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो जाता है। सूत्र में गुणवचन का अभिप्राय है– गुणमुक्त्वा यो गुणवति द्रव्ये वर्त्तते स गुणवचन:। उदाहरण यथा–

'मृदु' (कोमल) यह गुणवाची प्रातिपदिक है अत: इससे प्रकृतसूत्रद्वारा स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय कर अनुबन्धलोप, उकार को यण्-वकार तथा विभक्ति लाने पर 'मृद्वी' प्रयोग सिद्ध होता है। ङीष् के अभाव में 'मृदु:' ही रहेगा। इसीप्रकार पट्वी, पटु:। गुर्वी, गुरु:। साध्वी, साधु: लघ्वी, लघु: आदि।

[१२५६] बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५।।

बहु-आदिभ्य:, च। बहु आदिगणपठित प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो जाता है। यथा–

'बहु' (बहुत) प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीष् (ई) प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा 'इको यणचि' [१५] से उकार को वकार कर विभक्ति कार्य करने पर 'बह्वी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। ङीष् के अभाव में 'बहु:' ही बनेगा।

अब बह्वादिगण के अन्तर्गत दो गणसूत्रों का उल्लेख करते हैं-

[गणसूत्रम्] कृदिकारादक्तिन:।।

कृत् प्रत्ययसम्बन्धी इकार जो क्तिन्प्रत्यय का न हो तो तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा-

रात्रि (रात) शब्द 'रा' धातु से 'राशदिभ्यां त्रिप्' इस औणादिक-सूत्र द्वारा त्रिप् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। इसके अन्त में इकार है जो क्तिन् प्रत्यय का अवयव नहीं है अत: प्रकृतगणसूत्र से वैकल्पिक ङीष् (ई) प्रत्यय हो कर ङीषपक्ष में 'यस्येति च' [२३६] से भसंज्ञक इकार का लोप कर विभक्ति कार्य करने से 'रात्री' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। ङीष् के अभाव में-'रात्रि:'। इसी प्रकार-राजी, राजि:। ओषधी, ओषधि: आदि। 'अक्तिन:' कहने से-कृति:, स्तुति:, मति: आदि में ङीष् नहीं होता।

[गणसूत्रम्] सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।।

कई आचार्यों का मत है कि चाहे कोई सा ह्रस्व इकार हो परन्तु क्तिन् का जो अर्थ है वह उसका न हो तो तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो जाता है।

उदाहरण यथा– 'शकटि' [छोटा छकड़ा] शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है यहाँ क्तिन् का अर्थ (भाव) भी नहीं है अत: स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतगणसूत्र से ङीष् प्रत्यय विकल्प से हो जाता है। ङीषपक्ष में भसंज्ञक इकार का लोप होकर विभक्तिकार्य करने से 'शकटी' तथा ङीष् के अभाव में 'शकटि:' ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। उपर्युक्त रात्रिशब्द औणादिक था। कुछ लोक औणादिकों को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक मानते हैं, उन के मत् में वह इस गणसूत्र का उदाहरण होगा। प्रत्युदाहरण पूर्वसूत्रस्थ समझने चाहियें।

[१२५७] पुंयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८।।

पुंयोगात्, आख्यायाम्। पुरुष का जो नाम पुरुष के साथ संबन्ध होने के कारण उस की स्त्री के लिये भी

प्रयुक्त होता है उस अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि जो अदन्त शब्द पुंलिङ्ग के लिये प्रयुक्त होता है यदि उसका प्रयोग पति-पत्नी भाव सम्बन्ध के कारण स्त्री के लिये भी होने लगे तो वहां ङीष् प्रत्यय होता है। यथा-हिन्दी में चौधरी की स्त्री को चौधराइन, पण्डित की स्त्री को पण्डिताइन आदि कहते हैं वैसे यहाँ संस्कृत में भी इस प्रकार के शब्द ङीष् प्रत्यय लगा कर स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण यथा-

गोपस्य स्त्री-गोपी (गोप अर्थात् ग्वाले की स्त्री ग्वालिन)। गोपशब्द मुख्यतया पुँल्लिङ्ग है। पतिपत्नी भाव-सम्बन्ध के कारण इस का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होता है। तब इससे ङीष् (ई) हो कर भसंज्ञक अकार का लोप हो विभक्तिकार्य करने से 'गोपी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-गणकस्य पत्नी-गणकी [ज्योतिषी की पत्नी], महामात्रस्य पत्नी-महामात्री [प्रधानमन्त्री की पत्नी]।

वा०- पालकान्तान्न॥

'पालक' शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता। यह वार्त्तिक 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] द्वारा प्राप्त ङीष् का निषेध करती है।

उदाहरण यथा- गोपालकस्य स्त्री-गोपालिका [ग्वाले की स्त्री]। गोपालक शब्द से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] से ङीष् प्राप्त होता है परन्तु अन्त में पालकशब्द होने के कारण प्रकृतवार्त्तिक से उसका निषेध हो जाता है। अब अदन्त होने के कारण 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप्, अनुबन्धलोप वक्ष्यमाण 'प्रत्ययस्थात्०' [१२५८] सूत्र से क कार से पूर्व अकार को इकार आदेश, सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने से-'गोपालिका' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-अश्वपालकस्य स्त्री-अश्वपालिका।

[१२५८] प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ।७।३।४४॥

प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इत्, आपि, असुपः। प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व ह्रस्व अकार को ह्रस्व इकार आदेश हो जाता है आप् प्रत्यय परे हो तो। परन्तु वह आप् से परे नहीं होना चाहिये। यथा-गोपालिका, अश्वपालिका। इन पूर्वोक्त उदाहरणों में इकार आदेश इसी सूत्र से हुआ है। क्योंकि इन में ककार प्रत्ययस्थ था (ण्वुल् प्रत्यय के वु को अक आदेश करने से पालक शब्द बना था)। अतः इस से पूर्व अकार को इकार हो गया, आप् (टाप्) परे था ही, और वह सुप् से भी परे नहीं था, क्योंकि प्रातिपदिक से परे ही टाप् किया गया था। इस सूत्र के अन्य उदाहरण यथा-

सर्विका (अज्ञात सब स्त्री)। 'सर्व' प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में अदन्त होने के कारण 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् प्रत्यय हो सवर्णदीर्घ करने से 'सर्वा' शब्द निष्पन्न हो जाता है। यहाँ सवर्णदीर्घ एकादेश को पूर्वान्तवत् मान कर 'सर्वा' की सर्वनामसंज्ञा अक्षुण्ण रहती है। अब अज्ञात आदि अर्थों में इस सर्वनाम की टि से पूर्व 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' [१२२९] से अकच् (अक्) प्रत्यय करने से-सर्व् अकच् आ=सर्व् अक् आ='सर्वका' इस स्थिति में आप् के परे रहते प्रकृतसूत्र द्वारा अकच् प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश कर विभक्ति कार्य करने से 'सर्विका' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

कारिका (करने वाली)। कृधातु से कर्तृकारक में 'ण्वुल्तृचौ' [७८४] से ण्वुल् प्रत्यय, वु को अक आदेश तथा ऋकार को वृद्धि (आर्) हो कर 'कारक' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में अदन्त होने के कारण 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् प्रत्यय हो सवर्णदीर्घ करने से 'कारका' इस स्थिति में आप् परे रहते प्रत्यय के ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश होकर विभक्ति कार्य करने से 'कारिका' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अत् को ही इकार आदेश होता है अन्य किसी वर्ण को नहीं। यथा- 'नौ' शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय हो कर स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् करने पर 'नौका' शब्द निष्पन्न होता है। इस में प्रत्यय के ककार से पूर्व अत् नहीं अपितु औकार है अतः इसे इकार आदेश नहीं होता।

ककार भी यदि प्रत्यय में स्थित होगा तभी उस से पूर्व अत् को इकार होगा अन्यथा नहीं। यथा– शक् धातु से पचाद्यच् प्रत्यय [७८६] कर टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभक्ति कार्य करने से 'शका' [समर्थ स्त्री] प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ आप् के परे रहते ककार से पूर्व अत् को इकार आदेश नहीं होता, कारण कि, ककार प्रत्यय में स्थित नहीं अपितु शक् धातु का अवयव है।

आप् यदि सुप् पे परे होगा तो इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। यथा-बहव: परिव्राजका यस्यां सा-बहुपरिव्राजका (नगरी)। [बहुत संन्यासियों वाली नगरी]। यहाँ 'बहु' और 'परिव्राजक' पदों का बहुव्रीहिसमास हुआ है। 'बहु जस्+परिव्राजक जस्' इस अलौकिक-विग्रह में समास, उस की प्रातिपदिकसंज्ञा, 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' [७२१] से समास के अवयव दोनों सुपों (जस्, जस्) का लुक्, स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने से 'बहुपरिव्राजका 'प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यहाँ आप् (टाप्) परे तो है पर वह समास के अवयव लुप्त हुए अन्तिम जस् से परे हैं क्योंकि प्रत्ययलक्षण द्वारा लुप्त हुए जस् को माना जा सकता है। अत: यहाँ प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार नहीं होता।

वा०– सूर्याद् देवतायां चाब् वाच्य:॥

'सूर्य' प्रातिपदिक से पुंयोग में देवतास्त्री के वाच्य होने पर चाप् प्रत्यय हो जाता है। चाप् का चकार-पकार लुप्त हो 'आ' शेष रहता है। पौराणिक आख्यानों में सूर्यदेव की दो पत्नियां मानी जाती हैं-एक देवता पत्नी और दुसरी मानुषी (मनुष्यजातीया)। इस वार्त्तिक की प्रवृत्ति सूर्य की देवतापत्नी के वाच्य होने पर ही होती है। सूर्यस्य देवता पत्नी-सूर्या। यहाँ 'सूर्य' प्रातिपदिक से पुंयोग में देवतापत्नी की विवक्षा में 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] से ङीष् प्राप्त था। परन्तु प्रकृत वार्त्तिक से उसका बाध कर चाप् प्रत्यय हो जाता है। चाप् के अनुबन्धों का लोप, सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सूर्या' (सूर्य की देवता पत्नी) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

सूर्यस्य पत्नी मानुषी-सूरी (सूर्य की मनुष्य पत्नी)। यहाँ मनुष्यपत्नी वाच्य होने पर 'सूर्य' प्रातिपदिक से पूर्वोक्त वार्त्तिक द्वारा चाप् प्रत्यय नहीं होता। 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] से ङीष् होकर अनुबन्धालोप तथा 'यस्येति च' [२३६] से भसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है-सूर्य्+ई। अब अग्रिमवार्त्तिक प्रवृत्त होता है।

वा०– सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च॥

छप्रत्यय या ङी प्रत्यय परे हो तो सूर्य और अगस्त्य शब्दों के य् का लोप हो जाता है।

'सूर्य्+ई' यहाँ ङीप्रत्यय परे हैं अत: सूर्यशब्द के यकार का लोप हो विभक्ति लाने से 'सूरी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

[१२५९] इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमाऽरण्ययव-यवन-मातुलाऽऽचार्याणाम् आनुक् ।४।१।४९॥

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य-इन बारह प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय तथा इन प्रातिपदिकों को आनुक् का आगम भी होता है। आनुक् के अन्त में उकार-ककार इत् हैं, 'आन्' ही शेष रहता है। कित् होने से यह आगम प्रातिपदिकों का 'आद्यन्तौ टकितौ' [८५] के अनुसार अन्तावयव होता है।

यह सूत्र अष्टाध्यायी में पुंयोग के प्रकरण में पढ़ा गया है। परन्तु इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, मातुल और आचार्य-इन आठ शब्दों से ही पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है अन्यों से असम्भव होने के कारण पुंयोग में प्रवृत्ति नहीं होती। उन से वक्ष्यमाण वार्त्तिकोक्त अर्थों में ही इसकी प्रवृत्ति होती है।

उदाहरण यथा– इन्द्रस्य स्त्री (पत्नी)-इन्द्राणी [इन्द्र की पत्नी]। यहाँ 'इन्द्र' प्रातिपदिक से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय तथा प्रातिपदिक के अन्त में आनुक् का आगम हो अनुबन्धलोप करने से – 'इन्द्र आन्+ई' हुआ। अब सवर्णदीर्घ कर णत्व और विभक्तिकार्य करने से 'इन्द्राणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार-वरुणस्य स्त्री-वरुणानी, भवस्य स्त्री-भवानी, शर्वस्य स्त्री - शर्वाणी, रुद्रस्य स्त्री-रुद्राणी, मृडस्य स्त्री– मृडानी। भव, शर्व,

रुद्र और मृड– ये सब शिवजी के नाम हैं। इन्द्र आदि इन शब्दों से ङीष् तो पुंयोग में 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] सूत्र से प्राप्त था ही केवल आनुक् आगम के लिये सूत्र में इन को ग्रहण किया गया है।

अब वार्त्तिकों द्वारा अन्य शब्दों के अर्थों का निर्देश करते हैं-

वा०– हिमाऽरण्ययोर्महत्त्वे।।

हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से महत्त्व (बड़ा होना) अर्थ में ही ङीष् और आनुक् का विधान समझना चाहिये। यथा-

महद् हिमम्- हिमानी, महद् अरण्यम्-अरण्यानी। (बड़ी बर्फ, बड़ा जंगल)। इन अर्थों में इन का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है। सिद्धि 'इन्द्राणी' की तरह समझनी चाहिये।

वा०-यवाद् दोषे।।

'यव' प्रातिपदिक से दोषद्योत्य होने पर ङीष् प्रत्यय और प्रकृति को आनुक् का आगम हो जाता है। उदाहरण यथा-

दुष्टो यवः– यवानी (दुष्ट यव अर्थात् अजवायन)। यवानी वह द्रव्य है जो जाति से तो यव नहीं पर आकृत्या यव से सदृश है। 'दोष' से यहाँ यही अभिप्रेत है।

वा०– यवनाल्लिप्याम्।।

'यवन' प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय और प्रकृति को आनुक् का आगम लिपिविशेष के वाच्य में ही होता है। यथा–

यवनानां लिपिः– यवनानी (यूनानियों की लिपि)।

वा०– मातुलोपाध्यायोरानुग्वा।

मातुल और उपाध्याय प्रातिपदिकों से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय तो नित्य होता है पर आनुक् का आगम विकल्प से। उदाहरण यथा–

मातुलस्य स्त्री (पत्नी)– मातुलानी, जहां आनुक् नहीं होगा वहां केवल ङीष् हो भसंज्ञक अकार का लोप हो जायेगा-मातुली (मामे की पत्नी, मामी)। इसी प्रकार– उपाध्यायस्य स्त्री (पत्नी)– उपाध्यायानी, उपाध्यायी। यदि 'उपाध्याय की पत्नी' इस प्रकार पुंयोग विवक्षित न होगा वह स्त्री स्वयम् अध्यापिका होगी तो 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् ही होगा-उपाध्याया (अध्यापिका स्त्री)

वा०– आचार्यादणत्वं च।।

'आचार्य' प्रातिपदिक से परे आनुक् के नकार को णकार नहीं होता। उदाहरण यथा-आचार्यस्थ स्त्री (पत्नी)-आचार्यानी (आचार्य की पत्नी)। यहाँ पुंयोग में प्रकृतसूत्र द्वारा ङीष् प्रत्यय हो कर आनुक् का आगम हो गया है। अट्कुप्वाङ्० [१३८] से नकार को णकार प्राप्त होता है पर प्रकृतवार्त्तिक से उस का निषेध हो जाता है। यदि स्त्री स्वयं पण्डिता होगी तो प्रकृतसूत्र से ङीष् और आनुक् न हो कर 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् ही होगा– आचार्या।

वा०– अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।।

अर्य (स्वामी, वैश्य) तथा क्षत्रिय प्रातिपादिकों से स्वार्थ में (पुंयोग में नहीं, जातिवाच्य होने पर) स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष्+आनुक् विकल्प से होते हैं, पक्ष में टाप् होगा। उदाहरण यथा– अर्याणी, अर्या (स्वामिनी, वैश्या)। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। पुंयोग में 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] से ङीष् निर्बाध होगा-अर्यस्य स्त्री (पत्नी)-अर्यी, क्षत्रियस्य स्त्री (पत्नी)-क्षत्रियी।

[१२६०] क्रीतात् करणपूर्वात् ।४।१।५०।।

क्रीतशब्द जिसके अन्त में तथा करणवाचक जिसके आदि में हो ऐसे अदन्त समस्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा-

वस्त्रैः क्रीता- वस्त्रक्रीती [वस्त्रों द्वारा खरीदी गई भूमि, स्त्री आदि]। 'वस्त्रभिस्+क्रीत' इस अवस्था में 'क्रीत' शब्द से सुबुत्पत्ति से पूर्व ही 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इस परिभाषा के बल से 'कर्तृकरणे कृता बहुलम् [९२६] सूत्र द्वारा तत्पुरुषसमास होकर सुब्लुक् करने पर 'वस्त्रक्रीत' बना। इस शब्द के अन्त में क्रीतशब्द तथा इसके आदि में करणवाचक मौजूद हैं किञ्च यह समस्तशब्द अदन्त भी है अतः इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीष् प्रत्यय हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'वस्त्रक्रीती' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

यह ङीष् क्वचित् नहीं भी हो पाता। यथा- धनेन क्रीता-धनक्रीता (धन से खरीदी हुई) कारण कि 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' [९२६] सूत्र में 'बहुलम्' ग्रहण के कारण 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः' इस परिभाषा का क्वचित् आश्रयण नहीं भी किया जाता। तब सुबन्त का सुबन्त के साथ ही समास होने से 'क्रीत' को सुबन्त बनाने से पूर्व ही स्त्रीप्रत्यय करना पड़ता है; ऐसी दशा में उससे 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् ही हो सकता है इस प्रकार 'धनटा+क्रीता सु' इस अलौकिकविग्रह वाले समास में सुब्लुक् कर 'धनक्रीता' यह आदन्त शब्द निष्पन्न होता है। अब इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् नहीं हो सकता क्योंकि इस सूत्र में अदन्त से ही ङीष् का विधान किया गया है आदन्त से नहीं।

[१२६१] स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।४।१।५४।।

स्वाङ्गात्, च, उपसर्जनात्, असंयोगोपधात्। जिसकी उपधा में संयोग नहीं ऐसा उपसर्जनसंज्ञक जो स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा-

केशान् अतिक्रान्ता- अतिकेशी अतिकेशा वा [केशों को जो लांघ चुकी है, अर्थात् केशों से भी अधिक काली स्त्री या मूर्त्ति आदि या लम्बे बालों वाली स्त्री]। यहाँ 'अति+केश शस्' इस अलौकिक विग्रह में' अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्त्तिक से प्रादिसमास में सुब्लुक् होकर 'अतिकेश'हुआ। यहाँ स्वाङ्गवाची शब्द है 'केश', इस की उपधा में कोई संयोग नहीं और यह विग्रह में नियतविभक्तिक होने से 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' [९५१] से उपसर्जनसंज्ञक भी है अतः विभक्ति लाने से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा में 'अतिकेश' शब्द से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीष् प्रत्यय विकल्प से हो जाता है। ङीष्पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'अतिकेशी' तथा ङीष् के अभाव में 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् हो सवर्णदीर्घ का विभक्ति लाने से 'अतिकेशा' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

इसीप्रकार- चद्र इव मुखं यस्याः सा- चन्द्रमुखी चन्द्रमुखा वा [चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली स्त्री]। यहाँ 'चन्द्र सु+मुख सु' इस अलौकिकविग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' [९६५] द्वारा बहुव्रीहिसमास में सुब्लुक् होकर 'चन्द्रमुख' हुआ। इसमें 'मुख' शब्द स्वाङ्गवाची है, इसकी उपधा में कोई संयोग नहीं, 'सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहिः' इस वचन के अनुसार यह उपसर्जनसंज्ञक भी है अतः तदन्त 'चन्द्रमुख' शब्द से विभक्ति लाने से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से पाक्षिक ङीष् प्रत्यय हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'चंद्रमुखी' तथा पक्षान्तर में टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभक्ति लाने से 'चंद्रमुखा' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

संयोग जिस की उपधा में हो ऐसा जो स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीष् नहीं होता, 'अजाद्यतष्टाप् [१२४५] से अदन्तलक्षण केवल टाप् ही होगा। यथा-शोभनौ गुल्फौ सुगुल्फा [सुन्दर गुल्फों वाली]। यहाँ 'सु+गुल्फ औ' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' [९६५] से बहुव्रीहिसमास हुआ है। समास में सुब्लुक् हो स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभत्तिकार्य करने पर 'सुगुल्फा' प्रयोग सिद्ध हुआ है। यहाँ 'गुल्फ' इस स्वाङ्गवाची शब्द में 'ल्फ्' यह संयोग उपधा में वर्त्तमान है अतः प्रकृतसूत्र से पाक्षिक ङीष् नहीं हुआ।

स्वाङ्गवाची शब्द यदि उपसर्जनसंज्ञक न होगा तो भी तदन्त से प्रकृतसूत्र द्वारा पाक्षिक ङीष् न होगा। यथा-

शिखा [चोटी]। यहाँ 'शीङ: खो ह्रस्वश्च' इस उणादिसूत्र से शीङ् धातु से खप्रत्यय और धातु को ह्रस्व होकर 'शिख' शब्द निष्पन्न होता है। यह उपसर्जनसंज्ञक नहीं है अत: स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से पाक्षिक ङीष् न होकर अदन्तलक्षण टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभक्ति कार्य करने पर 'शिखा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

नोट-इस सूत्र में 'स्वाङ्ग' शब्द का अर्थ 'अपना अङ्ग नहीं समझना चाहिये। यह शब्द पारिभाषिक है। इस की त्रिविध परिभाषा वैयाकरणों के अनुसार इस प्रकार कही जाती है-

"(१) अद्रवं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।

(२) अतत्स्थं तत्र दृष्टं च (३) तेन चेत् तत्तथायुतम्।।"

स्वाङ्ग के तीन लक्षण हैं-(१) जो वस्तु तरल न हो साकार हो और प्राणियों में वर्त्तमान हो किञ्च वह किसी विकार (रोग) से उत्पन्न न हुई हो उसे 'स्वाङ्ग' कहते हैं। (२) प्राणियों के अङ्ग यदि अब प्राणियों में विद्यमान न हो कर कहीं अन्यत्र पड़े हुए हों तो भी वे 'स्वाङ्ग' कहलाते हैं। (३) जैसे यह स्वाङ्ग प्राणियों में होता है उसी प्रकार अन्यत्र मूर्त्ति आदि मे स्थित होने पर भी उसे 'स्वाङ्ग' समझना चाहिये। इन सब की सोदाहरण व्याख्या लघुसिद्धान्तकौमुदी की भैमीव्याख्या में देखें।

[१२६२] न क्रोडादि-बह्वच: ।४।१।५६।।

क्रोडादिगणपठित स्वाङ्गवाचकों से तथा बह्वच् (दो से अधिक अचों वाले) स्वाङ्गवाचक शब्दों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता। क्रोडादि स्वाङ्गवाचक से यथा-

कल्याणी क्रोडा (वक्ष:स्थलम्) यस्या: सा=कल्याणक्रोडा अश्वा [शुभ छाती वाली घोड़ी]। 'क्रोडा' शब्द घोड़े के वक्ष:स्थल का वाचक है और नित्य स्त्रीलिङ्ग है। 'कल्याणी सु+क्रोडा सु' इस अलौकिकविग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' [९६५] से बहुव्रीहिसमास, सुपों का लुक् तथा 'स्त्रिया: पुंवद् भाषित०' [९६८] से 'कल्याणी' को पुंवद्भाव से 'कल्याण' करने पर 'कल्याणक्रोडा' इस स्थिति में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' [९५२] से उपसर्जनह्रस्व हो जाता है- 'कल्याणक्रोड'। अब सुबुत्पत्ति से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा में स्वाङ्गवाची 'क्रोडा' शब्द अन्त में होने के कारण 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' [१२६१] से पाक्षिक ङीष् प्राप्त होता है, परन्तु प्रकृत 'न क्रोडादिबह्वच: [१२६२] सूत्र से उस का निषेध हो जाता है। तब 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से अदन्तलक्षण टाप्, सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर-'कल्याणक्रोडा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। क्रोडादि आकृतिगण है अत: 'सुभगा, सुगला'आदियों की सिद्धि इसी तरह समझनी चाहिये।

बह्वच स्वाङ्गवाची का उदाहरण यथा- शोभने जघने यस्या: सा=सुजघना [सुन्दर जघनस्थलों वाली स्त्री]। यहाँ 'सु+जघन औ' इस बहुव्रीहिसमास के अलौकिकविग्रह में सुब्लुक् हो कर 'सुजघन' बना। अब स्वाङ्गवाची जघन शब्द के अन्त में होने के कारण 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' [१२६१] से स्त्रीत्व की विवक्षा में वैकल्पिक ङीष् प्राप्त होता है परन्तु 'जघन' शब्द बहुत अचों वाला है अत: प्रकृतसूत्र से ङीष् का निषेध हो अदन्त लक्षण टाप् कर सवर्णदीर्घ हो विभक्तिकार्य करने पर 'सुजघना' प्रयोग निष्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार-पृथुजघना, सुवदना, पद्मवदना, महाललाटा आदि की सिद्धि समझनी चाहिये।

[१२६३] नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् ।४।१।५८।।

स्वाङ्गवाची नख या मुख शब्दों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में संज्ञा गम्यमान हो तो ङीष् प्रत्यय नहीं होता। उदाहरण यथा-

शूर्पणखा- यह रावण की बहन राक्षसी की संज्ञा है। संज्ञा को यद्यपि लौकिकविग्रह से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता तथापि अज्ञों के बोध के लिये अलीकमार्ग का आश्रय कर इसे यथाकथञ्चित् प्रदर्शित किया जाता है। शूर्पाणीव नखानि यस्या: सा तन्नाम्नी राक्षसी शूर्पणखा [छाज की तरह नाखूनों वाली तन्नाम्नी राक्षसी, रावणभगिनी]। यहाँ 'शूर्प जस्+नख जस्' के बहुव्रीहिसमास में सुपों का लुक् हो कर 'शूर्पनख' हुआ। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में

'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' [१२६१] द्वारा प्राप्त पाक्षिक ङीष् का प्रकृत 'नखमुखात्संज्ञायाम्' [१२६३] से निषेध हो जाता है। तब अदन्तलक्षण टाप् हो सवर्णदीर्घ तथा वक्ष्यमाण 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' [१२६४] से नकार को णकार कर विभक्ति लाने से 'शूर्पणखा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यदि यह किसी का नाम न होगा तो यौगिकवृत्ति से 'शूर्पाणीव नखानि यस्याः इस विग्रह में ङीष् हो कर 'शूर्पनखी' बनेगा। तब वक्ष्यमाण सूत्र से णत्व भी न होगा, वह संज्ञा में ही प्रवृत्त होता है।

दूसरा उदाहरण यथा– गौरमुखा [गोरे मुख वाली तन्नामक कोई स्त्री]। गौरं मुखं यस्याः सा तन्नाम्नी स्त्री। यहाँ भी पूर्ववत् बहुव्रीहिसमास, सुब्लुक् तथा 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' [१२६१] से प्राप्त पाक्षिक ङीष् का प्रकृतसूत्र से निषेध हो अदन्तलक्षण टाप् कर विभक्ति लाने से-'गौरमुखा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यहाँ भी यदि संज्ञा विवक्षित न होगी तो यौगिकवृत्ति से ङीष् हो कर 'गौरमुखी' भी बनेगा।

संज्ञा न होने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। यथा– ताम्रमुखी कन्या। ताम्रमिव मुखं यस्याः सा=ताम्रमुखी [तांबे की तरह लाल मुख वाली कन्या]। यह किसी का नाम नहीं यौगिक शब्द है अतः बहुव्रीहिसमास हो सुब्लुक् कर स्त्रीत्व की विवक्षा में 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' [१२६१] से ङीष् हो जाता है। संज्ञा न होने से प्रकृतसूत्र द्वारा निषेध नहीं होता।

'शूर्प+नखा' के णत्वविधान में समानपद न होने से रेफ से परे 'अट्कुप्वाङ०' [१३८] द्वारा नकार को णकार नहीं हो सकता। अतः इसके लिये अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है-

[१२६४] पूर्वपदात् संज्ञायामगः ।८।४।३।।

पूर्वपदस्थ निमित्त (ऋ, र्, ष्) से परे नकार को णकार हो जाता है संज्ञा में, परन्तु गकार के व्यवधान में इस सूत्र से णत्व नहीं होता।

'शूर्प+नखा' यहाँ पूर्वपद में रेफ निमित्त विद्यमान है अतः इस से परे 'नखा' के नकार को णकार हो जाता है– शूर्पणखा। यह संज्ञा है– पीछे बताया जा चुका है। गकार के व्यवधान में यह णत्व नहीं होता– यथा– ऋचामयनम्=ऋगयनम्।

[१२६५] जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।४।१।६३।।

जातेः, अस्त्रीविषयात्, अयोपधात्। जातिवाचक जो प्रातिपदिक नित्यस्त्रीलिङ्गी नहीं और जिस की उपधा में यकार नहीं उस से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय हो जाता है। जाति शब्द यहाँ पारिभाषिक है। इस का लक्षण यथा–

"आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, गोत्रं च चरणैः सह।।

यहाँ 'जाति' के चार प्रकार के लक्षण किये गये हैं-

(१) आकृतिग्रहणा जातिः– आकृतिविशेष जिस की व्यञ्जक होती है उसे 'जाति' कहते हैं। जैसे एक कुक्कुट या सूकर को देख कर उन में गृहीत अवयवसंस्थान से अन्यत्र सर्वत्र कुक्कुट सूकर आदि व्यक्तियों का ज्ञान हो जाता है तो ये कुक्कुट सूकर आदि प्रातिपदिक व्यक्तिवाचक होते हुए भी जातिवाचक हैं। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में इन से ङीष् प्रत्यय हो कर भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से– कुक्कुटी, सूकरी आदि सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार 'तट' शब्द भी जातिवाचक है। एक तट को देख कर अन्यत्र सब तटों का ज्ञान हो जाता है। अतः इस जातिवाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् प्रत्यय हो अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'तटी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

(२) लिङ्गानां च न सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या (जातिः)– किसी व्यक्ति में एक बार जिसके कथन से अन्य अनेक व्यक्तियों में उस का बोध हो जाये तो उसे भी 'जाति' समझना चाहिये। परन्तु ऐसा शब्द सर्वलिङ्गी न

होना चाहिये। यथा-किसी को जब वृषल [शूद्र] कह दिया जाये तो उसके पिता, पितामह, पुत्र, भाई आदि का भी वृषल होना स्वयं विदित हो जाता है तो यह वृषलशब्द जातिवाचक हुआ। इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् हो अकारलोप कर विभक्ति लाने से 'वृषली' [शूद्रजाति की स्त्री] प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार 'ब्राह्मण' शब्द भी जातिवाचक है उस से भी इसी तरह प्रकृतसूत्र से ङीष् प्राप्त होता है परन्तु शार्ङ्गरव आदि गण में इस का पाठ होने से 'शार्ङ्गरवाद्यञोङीन्' [१२७१] सूत्र से ङीष् का बाध कर ङीन् प्रत्यय हो जाता है-ब्राह्मणी। (ङीष् और ङीन् प्रत्ययों के करने से स्वर का भेद होता है)।

[३-४] गोत्रं च चरणैः सह– अपत्यप्रत्ययान्त प्रातिपदिक तथा चरणवाची (वेदशाखाध्येतृवाचक) प्रातिपदिक भी जातिवाचक होते हैं। यथा– उपगोरपत्यम् औपगवः [उपगु की सन्तान]। यहाँ 'उपगु ङस्' से अपत्य अर्थ में 'तस्यापत्यम्' [१००१] से अण् तद्धित प्रत्यय ला कर सुब्लुक्, आदिवृद्धि, उकार को 'ओर्गुणः' [१००२] से ओकार गुण तथा अवादेश करने से 'औपगव' प्रातिपदिक निष्पन्न हुआ। यह अपत्यप्रत्ययान्त होने से इस तृतीयलक्षणानुसार जातिवाचक है अतः इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ङीष् प्रत्यय आ कर भसंज्ञक अकार का लोप करने से 'औपगवी' [उपगु की लड़की] प्रयोग सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि अण्प्रत्ययान्त होने से 'औपगव' से स्त्रीत्व में 'टिड्ढाणञ्०' [१२४७] सूत्र से ङीप् प्राप्त था उस का यह अपवाद है।

चरणवाचियों का उदाहरण यथा– कठेन प्रोक्तमधीते इति कठी [कठ ऋषि द्वारा प्रोक्त' वेदशाखा को पढ़ने वाली स्त्री)। यहाँ ऋषिवाचक 'कठ' से 'तेन प्रोक्तम्' [११०५] के अर्थ में 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' [४.३.१०४] सूत्र से णिनि प्रत्यय हो कर 'कठचरकाल्लुक्' [४.३.१०७] से उसका लुक् हो जाता है। पुनः प्रोक्तप्रत्ययान्त इस 'कठ' से 'तदधीते' के अर्थ में 'तदधीते तद्वेद' [१०५०] द्वारा अण् प्रत्यय हो कर उस का भी 'प्रोक्ताल्लुक्' [४.२.६४] से लुक् हो जाता है। इस प्रकार से बने 'कठ' शब्द का अर्थ होता है– 'कठ ऋषि द्वारा प्रोक्त वेदशाखा का अध्ययन करने वाला'। 'गोत्रं च चरणैः। सह' के अनुसार यह जातिवाचक प्रातिपदिक है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा इससे ङीष् प्रत्यय हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'कठी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

चरण का दूसरा उदाहरण– बहव ऋचो (अध्येतव्याः) यस्याः' (बहुत ऋचाओं का अध्ययन करने वाली)। इस बहुव्रीहिसमास में 'ऋक्परब्धूः०' [९९०] सूत्रस्थ 'अनृच-बह्वृचावध्येतर्येव' इस इष्टि से समासान्त 'अ' प्रत्यय हो 'बह्वृच' शब्द निष्पन्न हो जाता है। चरणवाचक होने से यह जाति है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र द्वारा इससे ङीष् प्रत्यय हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'बह्वृची' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्रद्वारा जातिवाचक से ही ङीष् होता है अन्य से नहीं। यथा– मुण्डा [सिरमुण्डी औरत]। 'मुण्ड' शब्द जातिवाचक नहीं क्योंकि यहाँ आकृति से जाति की अभिव्यक्ति नहीं होती, सिर मुण्डाने या न मुण्डाने से आकृति एक सी रहती है। जाति का दूसरा लक्षण भी इस में घटित नहीं होता क्योंकि यह सर्वलिङ्गी है। अपत्यप्रत्ययान्त अथवा चरणवाची भी न होने से यह जातिवाचक नहीं। अतः प्रकृतसूत्र द्वारा इस से जातिलक्षण ङीष् न होकर 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से अदन्तलक्षण टाप् हो सवर्णदीर्घ कर विभक्ति लाने से 'मुण्डा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्र में 'अस्त्रीविषयात्' कहा गया है अर्थात् जातिवाचक शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग नहीं होना चाहिये। यथा– बालाका (बकुलविशेष)। यह शब्द सदा स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है। अतः प्रकृतसूत्र द्वारा ङीष न हो कर 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से अदन्तलक्षण टाप् ही होता है।

जातिवाचक शब्द की उपधा में यकार नहीं होना चाहिये वरन् प्रकृतसूत्र से ङीष् न होगा। यथा– क्षत्रिया [क्षत्रियजाति की औरत]। 'क्षत्रिय' शब्द उपर्युक्त द्वितीय लक्षण के अनुसार जातिवाचक तो है पर इस की उपधा में यकार है अतः इस से ङीष् नहीं होता, 'अजाद्यतष्टाप्' [१२४५] से टाप् हो कर रूप सिद्ध होता है।

वा०– योपधप्रतिषेधे हय-गवय-मुकय-मनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेधः॥ अर्थात् यकारोपध जातिवाचक से जो

पूर्वसूत्रद्वारा ङीष् का निषेध किया है वह निषेध 'हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य' इन पांच शब्दों में प्रवृत्त नहीं होता। तात्पर्य यह है कि इन पांच शब्दों से पूर्वसूत्र द्वारा जातिलक्षण ङीष् हो जाता है। उदाहरण यथा– हय-हयी (घोड़ी), गवय-गवयी (नीलगाय), मुकय-मुकयी (खच्चरी)। ये सब जाति के प्रथम लक्षण से जातिवाचक हैं। अतः इन से ङीष् हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से उक्त रूप सिद्ध हो जाते हैं।

'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च' [४.१.१६१] द्वारा तद्धितयत्प्रत्ययान्त मनुष्यशब्द भी जातिवाचक है। इस का भी प्रकृतवार्त्तिक में उल्लेख आया है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से जातिलक्षण ङीष् होकर भसंज्ञक अकार का लोप करने से 'मनुष्य्+ई' हुआ। अब 'हलस्तद्धितस्य' [१२४९] से उपधाभूत यकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'मनुषी' (मनुष्य जाति की स्त्री) प्रयोग सिद्ध होता है।

मत्स्य शब्द भी जातिवाचक है इस से भी प्रकृतवार्त्तिक की सहायता से 'जाते स्त्री०' [१२६५] सूत्र द्वारा ङीष् हो अकार का लोप करने पर 'मत्स्य्+ई' हुआ। अब यहाँ यकार का लोप करने के लिये अग्रिम वार्त्तिक प्रवृत्त होता है–

वा०–मत्स्यस्य ङ्याम्॥

ङी परे हो तो मत्स्य के उपधाभूत यकार का लोप हो जाता है।

'मत्स्य्+ई' यहाँ ङी परे है अतः प्रकृतवार्त्तिक से उपधाभूत यकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'मत्सी' (मादा मछली) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

[१२६६] इतो मनुष्यजातेः ।४।१।६५॥

इतः, मनुष्यजातेः। मनुष्यजातिवाचक ह्रस्वइकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय हो जाता है। 'जातेरस्त्री०' [१२६५] सूत्र में 'अतः' का अनुवर्त्तन होता है अतः उसकी प्रवृत्ति केवल अदन्त शब्दों तक ही सीमित है। यहाँ पुनः मनुष्यजातिवाचक ह्रस्व इकारान्तों से ङीष् विधान किया जा रहा है।

उदाहरण यथा– दक्षस्यापत्यं स्त्री-दाक्षी (दक्ष की कन्या)। यहाँ 'दक्ष' से 'तस्यापत्यम्' [१००१] के अर्थ में 'अत इञ्' [१०११] से तद्धितप्रत्यय 'इञ्' हो कर आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करने पर 'दाक्षि' यह इकारान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अपत्यप्रत्ययान्त होने से यह जातिवाचक है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र द्वारा इस से ङीष् प्रत्यय हो भसंज्ञक इकार का 'यस्येति च' [२३६] से लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'दाक्षी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

[१२६७] ऊङुतः ।४।१।६६॥

ऊङ्, उतः। जिस की उपधा में यकार न हो ऐसे मनुष्यजातिवाचक उदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है। ऊङ् के ङकार का लोप हो जाता है।

उदाहरण यथा– कुरोरपत्यं स्त्री– कुरूः (कुरु की लड़की) कुरुशब्द से 'तस्यापत्यम्' [१०११] के अर्थ में 'कुरुनादिभ्यो ण्यः [१०२६] से 'ण्य' प्रत्यय हो कर 'स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च' [४.१.१७५] से उसका लुक् हो जाता है। इस प्रकार अपत्यप्रत्ययान्त होने से यह जातिवाचक ठहरता है। पुनः इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ऊङ् प्रत्यय हो कर सवर्णदीर्घ करने से–'कुरू'। अब 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा की सहायता से इस की प्रातिपदिक संज्ञा हो कर स्वादियों की उत्पत्ति होती है। प्रथमा के एकवचन में सु ला कर रुत्वविसर्ग करने से 'कुरूः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

यदि उपधा में यकार होगा तो इस सूत्र की प्रवृत्ति न होगी। यथा– अध्वर्युः (ब्राह्मणी)। अध्वर्युशाखा का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी। यहाँ चरणवाचक होने से 'अध्वर्यु' जातिवाचक है पर उपधा में यकार होने के कारण स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ऊङ् नही होता वैसे का वैसा रहता है।

[१२६८] पङ्गोश्च ।४।१।६८॥

पङ्गोः, च। 'पङ्गु' (लङ्गड़ा) प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा– 'पङ्गु' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ऊङ् प्रत्यय हो कर सवर्णदीर्घ करने से-'पङ्गू'। अब लिङ्गविशिष्ट परिभाषा से इसे प्रातिपदिक मान कर प्रथमैकवचन में सुलाकर उसे रुत्व-विसर्ग करने पर 'पङ्गूः' (लङ्गड़ी) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

वा०– श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च॥

श्वशुर (ससुर) प्रातिपदिक से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है तथा 'श्वशुर' के उकार और अन्त्य अकार का लोप भी हो जाता है। उदाहरण यथा-

श्वशुरस्य स्त्री– श्वश्रूः (ससुर की पत्नी, सास)। 'श्वशुर' प्रातिपदिक से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतवार्त्तिक से ऊङ् प्रत्यय हो श्वशुर के उकार और अन्त्य अकार का लोप करने से श्वशुर्+ऊ=श्वश्रू। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा से ऊङन्त को प्रातिपदिक मान कर प्रथमैकवचन में 'श्वश्रूः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

[१२६९] ऊरूत्तरपदादौपम्ये ।४।१।६९॥

ऊरु-उत्तरपदात्, औपम्ये। उपमानवाचक जिस का पूर्वपद और 'ऊरु' जिस का उत्तरपद हो ऐसे समस्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है। उदाहरण यथा–

करभाविव ऊरू यस्याः सा=करभोरूः। मणिबन्धस्थान से ले कर कनिष्ठिका अङ्गुली तक हाथ की हथेलियों का बाह्य पार्श्ववर्त्ती जो मांसल भाग रहता है उसे 'करभ' कहते हैं– 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। करभ की तरह जिस के दोनों ऊरु मांसल हों उस स्त्री को 'करभोरू' कहते हैं। यहाँ बहुव्रीहिसमास में 'करभ' यह उपमानवाची पूर्वपद है और 'ऊरू' उत्तरपद है। अतः 'करभोरु' इस समस्त से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ऊङ् प्रत्यय हो कर विभक्तिकार्य करने पर 'करभोरूः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार-कदलीस्तम्भोरूः, गजनासोरूः आदि प्रयोग समझने चाहियें।

[१२७०] संहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च ।४।१।७०॥

संहित (संश्लिष्ट, जुड़ा हुआ), शफ (खुर), लक्षण (सुन्दर लक्षणों वाला), वाम (सुन्दर)– इन पूर्वपदों वाले और ऊरु-उत्तरपदवाले समस्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है। यहाँ पूर्वपद उपमानवाचक नहीं अतः पूर्वसूत्र से ऊङ् प्राप्त न था अतः यह सूत्र आरम्भ किया गया है। उदाहरण यथा-

संहितौ ऊरू यस्याः सा=संहितोरूः (संश्लिष्ट पट्टों वाली स्त्री)। यहाँ बहुव्रीहसमास में संहितोरु' प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से ऊङ् प्रत्यय हो सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'संहितोरूः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसीप्रकार–शफोरूः (संश्लिष्ट पट्टों वाली) लक्षणोरूः (सुन्दर लक्षणों से युक्त पट्टों वाली), वामोरूः (सुन्दर पट्टों वाली) प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

[१२७१] शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ।४।१।७३॥

शार्ङ्गरवादि-अञः, ङीन्। शार्ङ्गरव आदि गणपठित जातिवाचकों से तथा अञ्प्रत्ययान्त जातिवाचकों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय हो जाता है। ङीन् का 'ई' शेष रहता है, ङकार-नकार इत् हैं।

उदाहरण यथा– शृङ्गरोरपत्यं स्त्री-शार्ङ्गरवी [शृङ्गरु की लड़की]। 'शृङ्गरु' शब्द से अपत्य अर्थ में 'तस्यापत्यम्' [१००१] द्वारा अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' [१००२] से उकार को ओकार गुण, तथा 'एचोऽयवायावः' [२२] से ओकार को अव् आदेश हो कर 'शार्ङ्गरव' शब्द निष्पन्न होता है। अपत्यप्रत्ययान्त होने से यह जातिवाचक है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'जातेरस्त्री०' [१२६५] द्वारा प्राप्त ङीष् का बाध का प्रकृतसूत्र से ङीन् हो भसंज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'शार्ङ्गरवी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार 'ब्राह्मण' से स्त्रीत्व में 'ब्राह्मणी' प्रयोग निष्पन्न होता है।

अञ्प्रत्ययान्त का उदाहरण यथा– बिदस्यापत्यं स्त्री बैदी [बिद की लड़की] बिदशब्द से अपत्य अर्थ में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् [१०१३] से अञ् प्रत्यय कर आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करने से 'बैद' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अपत्यप्रत्ययान्त होने से यह जातिवाचक है। इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'जातेरस्त्रीविषयाद्०' [१२६५] से प्राप्त ङीष् का बाध कर प्रकृतसूत्र से ङीन् हो अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'बैदी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

गणसूत्रम्-नृनरयोर्वृद्धिश्च॥

यह शार्ङ्गरवादि में पठित गणसूत्र है। नृ और नर शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है तथा नृ और नर को वृद्धि भी हो जाती है। 'नृ' शब्द से 'ऋन्नेभ्योङीप्' [२३२] से ङीप् तथा नरशब्द से 'जातेरस्त्रीविषयाद्०' [१२६५] सूत्र से ङीष् प्राप्त था। इन दोनों का बाध कर प्रकृतसूत्र से ङीन् विधान किया जा रहा है और साथ में वृद्धि भी। ङीप्-ङीष्-ङीन् में स्वर का ही अन्तर है।

'नृ' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' [२३२] द्वारा प्राप्त ङीप् का बाध कर प्रकृतगणसूत्र से ङीन् प्रत्यय करने से 'नृ+ई'। अब इसी गणसूत्र से नृ के ऋकार को आर वृद्धि हो विभक्तिकार्य करने से 'नारी' (औरत) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

'नर' शब्द से भी इसीप्रकार ङीन् हो कर 'यस्येति च' [२३६] से भसंज्ञक अकार का लोप हो 'नर्+ई' इस अवस्था में इसी गणसूत्र से नकारोत्तर अकर को वृद्धि कर विभक्ति लाने से 'नारी' (औरत) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यदि पुंयोग अभीष्ट होगा तो 'नरस्य पत्नी-नरी' बनेगा, 'पुंयोगादाख्यायाम्' [१२५७] से ङीष् ही होगा।

[१२७२] यूनस्तिः ।४।१।७७॥

यूनः, तिः। 'युवन्' से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ति' यह तद्धित प्रत्यय हो जाता है। तद्धितप्रत्यय सुबन्त से ही हुआ करते हैं (अत्यन्त स्वार्थिक तद्धित प्रत्ययों को छोड़ कर)। अतः 'युवन् सु' से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से 'ति' प्रत्यय होकर तद्धितान्त की प्रातिपदिक संज्ञा हो 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' [७२१] से 'सु' का लुक् हो जाता है-'युवन्+ति'। अब 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' [१६४] से पदसंज्ञा के कारण 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' [१८०] से नकार का लोप हो कर विभक्ति लाने से 'युवतिः' (जवान स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

[यहाँ पर स्त्रीप्रत्ययप्रकरण का विवेचन समाप्त होता है]